आगम बोध

भाग -4

छोड़ें खोट

खोटे देव कभी नहीं भजना,
खोटे गुरु दूर से तजना।
खोटी पुस्तक कभी न पढ़ना,
खोटे वचन कभी नहीं सुनना।
खोटे भाव न मन में लाना,
कभी न खोटी बात बनाना ।

खोटी चेष्टा कभी न करना,
खोटी दृष्टि कभी न धरना ।
खोटे काम दूर से तजना,
खोटे धंधे कभी न करना।
खोटा सिक्का नहीं चलाना ,
खोटी चाल कभी नहीं चलना ।

खोटे वेश कभी न बनाना,
खोटे मार्ग कभी नहीं जाना ।
खोटी सलाह कभी नहीं देना,
खोटी चिंता में नहीं खोना ।
सम्यक् तत्त्वज्ञान प्रगटाना,
दुर्लभ नरभव सफल बनाना ।।

आगम बोध

भाग–चतुर्थ

संकलन-संपादन

(डॉ.) मनोज कुमार जैन, जबलपुर

M.Sc., M.A., Ph.D.

प्रकाशक

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

जबलपुर (म.प्र.)

कृति - आगम बोध पाठमाला भाग-4
संस्करण- प्रथम, मंगलवार, 6 मई 2015
षष्ठम् बाल संस्कार आवासीय शिक्षण शिविर पर प्रकाशित
आवृत्ति - 500 प्रतियां

अनुक्रम

क्रम	नाम	पृष्ठ
1.	दर्शन पाठ	1
2.	षट्-आवश्यक	4
3.	चार अनुयोग	7
4.	कर्म सिद्धांत	11
5.	लोक संरचना	16
6.	गृहीत व अगृहीत मिथ्यात्व	20
7.	सत्य व्यसन	24
8.	हमारे पर्व	28
9.	रक्षाबंधन कथा	32
10	सेठ सुदर्शन कथा	34
11	अनुप्रेक्षा (बारह भावना)	37

प्राप्ति स्थल -
श्री महावीर स्वामी दिगम्बर जैन मंदिर
स्वाध्याय भवन, पायलवाला मार्केट
बड़ा फुहारा, जबलपुर (म.प्र.)
फोन : 0761-2401108 मोबा. 09893095524

पाठ 1

दर्शन पाठ

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पापनाशनम् ।
दर्शनं स्वर्ग सोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम् ।।1।।
दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च ।
न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्र हस्ते यथोद्कम् ।।2।।
वीतराग मुखं दृष्ट्वा, पद्म-राग-समप्रभम् ।
जन्मजन्म कृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति ।।3।।
दर्शनं जिनसूर्यस्य, संसारध्वान्त - नाशनम् ।
बोधनं चित्तपद्मस्य, समस्तार्थ प्रकाशनम् ।।4।।
दर्शनं जिन चन्द्रस्य, सद्धर्मामृत वर्षणम् ।
जन्मदाह-विनाशाय, वर्धनं सुखवारिधः ।।5।।
जीवादितत्त्व प्रतिपादकाय, सम्यक्त्व मुख्याष्ट गुणार्णवाय ।
प्रशान्तरुपाय दिगम्बराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय ।।6।।
चिदानन्दैक-रुपाय, जिनाय परमात्मने ।
परमात्म-प्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः ।।7।।
अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम् ।
तस्मात् कारुण्यभावेन्, रक्ष-रक्ष जिनेश्वर !।।8।।
न हि त्राता न हि त्राता, न हि त्राता जगत्त्रये ।
वीतरागात् परो देवो, न भूतो न भविष्यति ।।9।।
जिने भक्ति र्जिने भक्ति, र्जिने भक्ति र्दिने दिने ।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु, सदा मेऽस्तु भवे भवे ।।10।।

जिनधर्म विनिर्मुक्तो, मा भवेच्चक्र वर्त्यपि ।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिनधर्मानुवासितः ।।11।।
जन्म-जन्म कृतं पापं, जन्मकोटि मुपार्जितम् ।
जन्म-मृत्यु-जरा-रोगं, हन्यते जिनदर्शनात् ।।12।।
अद्याभवत् सफलता नयन द्वयस्य, देव ! त्वदीय-चरणाम्बुज वीक्षणेन ।
अद्य त्रिलोक-तिलक ! प्रतिभासते मे, संसार-वारिधिरयं चुलुक प्रमाणः ।।13।।

अर्थ 1- देवों के भी देव देवाधिदेव का दर्शन-अवलोकन पापों का नाश करने वाला है । दर्शन स्वर्ग की सीढ़ी और मोक्ष का कारण है ।

अर्थ 2 - जिनेन्द्र देव के दर्शन से और साधुओं की वंदना से पाप अधिक समय तक नहीं ठहरते, जिस प्रकार छिद्र सहित हाथों में जल (ज्यादा देर तक नहीं ठहरता) अर्थात् नष्ट हो जाता है ।

अर्थ 3 - पद्मराग मणि के समान प्रभायुक्त वीतराग भगवान के मुख को देखकर जन्म-जन्मान्तर में किये पाप दर्शन करने से नष्ट हो जाते है ।

अर्थ 4 - जिनेन्द्र रुपी सूर्य का दर्शन संसार रुपी अंधकार का नाश करने वाला और मन रुपी कमल का विकासक तथा समस्त पदार्थों का प्रकाशक है ।

अर्थ5 - जिनेन्द्र रुपी चन्द्रमा का दर्शन जन्म रुपी ताप का नाश करने के लिये और सुख रुपी समुद्र की वृद्धि के लिए सद्धर्म रुपी अमृत की वर्षा करता है ।

अर्थ 6 - जीवादि सात तत्त्वों के प्रतिपादक, सम्यक्त्वादि आठ मुख्य गुणों के समुद्र, प्रशान्त रुप दिगम्बर देवाधिदेव अर्हन्त प्रभु, जिनेन्द्र देव के लिए नमस्कार हो ।

अर्थ 7 – आत्मनन्द स्वरुप कर्मों को जीतने वाले जिन, उत्कृष्ट आत्मा, परम आत्म तत्त्व के प्रकाशक, सिद्ध आत्मा आपको हमेशा नमस्कार हो।

अर्थ 8– आपके सिवा अन्य कोई शरण नहीं है, आप ही मेरे लिए शरण हैं, इसलिए दया करके हे जिनेन्द्र देव मेरी रक्षा करो–मेरी रक्षा करो ।

अर्थ 9 – तीन लोक में वीतराग अर्हन्त देव के सिवा और कोई रक्षा करने वाला नहीं है, न भूतकाल में हुआ और आगे होगा ।

अर्थ 10 – प्रतिदिन भव–भव में मुझमें जिनभक्ति सदा होवे (तीन बार यही भावना)

अर्थ 11 – जिनधर्म से रहित चक्रवर्ती भी नहीं होंऊ, भले ही दास हो जाऊँ, दरिद्र गरीब भी हो जाऊँ, लेकिन मेरा जिनधर्म में हमेशा वास होवे ।

अर्थ 12– जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से जन्म–जन्मान्तर में किये गये करोड़ों उपार्जित पाप और जन्म–मरण, बुढ़ापा तथा रोग नष्ट हो जाते हैं ।

अर्थ 13 – हे जिनदेव ! आपके चरण कमल देखने से आज मेरे दोनों नयन सफल हुए हैं । हे तीन लोक के तिलक स्वरुप, आज मुझे यह संसार समुद्र चुल्लु प्रमाण लगता है / प्रतिभासित होता है ।

प्रश्न

1. देवाधि देव का दर्शन कैसा है ?
2. दर्शन से पाप किस तरह नहीं ठहरते ?
3. जिनेन्द्र भगवान का मुख कैसा है ?
4. जिनरुपी सूर्य का दर्शन किस तरह प्रभावशाली है ?
5. जिनरुपी चन्द्रमा के दर्शन से क्या होता है ?

पाठ 2

षट् आवश्यक

देवपूजा गुरूपास्ति, स्वाध्याय संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने-दिने॥

देवपूजा, गुरु की उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये छः आवश्यक प्रतिदिन करने योग्य कर्म हैं।

आवश्यक अर्थात् अवश्य ही होने या करने योग्य। जिन भावों या क्रियाओं से हम दूसरों के आधीन नहीं होते हुये स्वाधीन रहकर सुखमय आनंदित जीवन जीते हैं, उन भावों या क्रियाओं को आवश्यक कहते हैं।

आवश्यक शब्द मूलतया अ और वश इन दो शब्दों से बना है। अ = नहीं, वश = आधीन अर्थात् दूसरों के आधीन नहीं होना अवश है। अवश संबंधी भाव अवश्य है तथा अवश्य संबंधी परिणमन या क्रियाओं को आवश्यक कहलाते हैं।

वास्तव में तो एकमात्र स्वरूपलीनता रूप दशा ही आवश्यक है अर्थात् अपने ज्ञानानन्द स्वभावी भगवान आत्मा को अपनत्वरूप जानकर, पहिचानकर उसमें ही लीनता, स्थिरता ही स्वाधीन सुखमय दशा को प्रगट करने का एकमात्र उपाय होने से वास्तविक आवश्यक है। इसे ही निश्चय आवश्यक या परमार्थ आवश्यक कहते हैं।

साधक दशा में स्वरूपलीनता परिपूर्ण नहीं हो पाने के कारण श्रावक को कषाय की मन्दता में सहज ही देवपूजा आदि के जो शुभभाव आते हैं, इन्हें ही व्यवहार आवश्यक कहा जाता है। इन शुभ भावों के कारण तीव्र आकुलतारूप अशुभ भावों से सहज ही निवृत्ति होती है। मुनिराज पद्मनंदि देव ने "पद्मनंदि पंचविंशतिका" नामक ग्रंथ में व्यवहार आवश्यक के 'देवपूजा' आदि ऊपर कहे गये छः भेद बताये हैं, जिनका वर्णन निम्नानुसार है:-

1. देवपूजा आवश्यक -

सच्चे देव का स्वरूप समझकर उनके गुणों का स्तवन करना ही देवपूजा आवश्यक कहलाता है। भगवान के गुणानुवाद के माध्यम से अपने स्वरूप की आराधना श्रावक करता है। देवपूजा किसी लौकिक कामना पूर्ति हेतु नहीं, अपितु सांसारिक विषय-कषायों रूप अशुभ भावों से बचकर परिणामों की निर्मलता के पवित्र उद्देश्य से अत्यंत उल्लसित चित्त से प्रसन्नतापूर्वक की जाती है, जिसमें भगवान के गुणों को याद करके निज स्वरूप की भावना भाई जाती है। वीतरागता व सर्वज्ञता आदि गुणों का स्तवन करते हुये विधिपूर्वक अष्ट द्रव्य से पूजा करना द्रव्यपूजा है तथा तदनुसार होने वाला शुभभाव, व्यवहार भाव देवपूजा है और स्वरूप रमणता से प्रगट आंशिक शुद्धि निश्चय भाव देवपूजा है।

2. गुरु उपासना आवश्यक -

गुरु का सच्चा स्वरूप समझकर उनकी उपासना करना ही व्यवहार गुरु उपासना है तथा गुरु द्वारा बताये गये मार्ग पर चलकर अपनी आत्मा की आराधनापूर्वक प्रगट शुद्ध परिणति निश्चय गुरु उपासना है।

अरहन्त व सिद्ध भगवान देव कहलाते हैं तथा आचार्य, उपाध्याय और साधु गुरु कहलाते हैं।

3. स्वाध्याय आवश्यक -

जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहे गये तत्त्वों का निरूपण करने वाले शास्त्रों का अध्ययन, मनन करना व्यवहार आवश्यक है तथा तत्त्वाभ्यासपूर्वक निज आत्मा की आराधना रूप प्रगट शुद्ध परिणति निश्चय स्वाध्याय आवश्यक है।

4. संयम आवश्यक -

श्रावक को सहज ही अपनी भूमिका के अनुसार हिंसादि पांच पापों से विरति तथा पांचों इन्द्रियों के निग्रह पूर्वक विषय-कषायों से निवृत्ति होती है,

वह व्यवहार संयम कहलाता है तथा निज आत्मा में संयमन रूप प्रगट शुद्ध परिणति निश्चय आवश्यक है।

5. तप आवश्यक -

श्रावक को शुभाशुभ इच्छाओं के निरोधपूर्वक होने वाली निज आत्मा की आराधना रूप प्रगट शुद्ध परिणति निश्चय आवश्यक है तथा इसके साथ ही अनशन आदि बाह्य तप संबंधी शुभभाव व्यवहार आवश्यक हैं। मात्र भोजन छोड़ने रूप उपवास करने का नाम तप नहीं है।

6. दान आवश्यक -

निज आत्मा की आराधना पूर्वक प्रगट शुद्ध परिणति वह स्वयं को दान है वह निश्चय दान आवश्यक है तथा इसके साथ स्व-पर के अनुग्रह के लिये योग्य पात्रों को आहार आदि देना वह व्यवहार दान है। जिनागम में दान के मुख्य रूप से चार भेद हैं :-

1. आहारदान 2. औषधिदान 3. अभयदान 4. ज्ञानदान।

इस प्रकार जहाँ निश्चय आवश्यक शुद्ध धर्म परिणति होने से मोक्षमार्ग है, वहीं व्यवहार आवश्यक पुण्य बंध का कारण है। निश्चय आवश्यक के बिना देवपूजा आदि कार्य मात्र शुभभाव हैं परन्तु यह भी हमें पापों से बचाकर भगवान के समीप लाते हैं। अत: निश्चय-व्यवहार दोनों आवश्यकों का यथार्थ स्वरूप समझकर अपने जीवन में आवश्यक प्रगट करने का अभ्यास करना चाहिये।

प्रश्न-

1. आवश्यक किसे कहते है ? समझाइये ।
2. निश्चय व व्यवहार आवश्यक में अंतर बताइये ।
3. षट्आवश्यकों की अलग-अलग परिभाषा दीजिये ।

पाठ 3

चार अनुयोग

प्र.1. अनुयोग किसे कहते हैं?

उत्तर वीतरागता की पोषक जिनेन्द्र भगवान की वाणी - "जिनवाणी" सुखमय जीवन जीने की विधि बतलाने के कारण शास्त्र कहलाती है। इन शास्त्रों के कथन करने की पद्धति (शैली) को अनुयोग कहते हैं। ये चार होते हैं :-

(1) प्रथमानुयोग (2) करणानुयोग (3) चरणानुयोग (4) द्रव्यानुयोग

प्र.2. प्रथमानुयोग का स्वरूप बताइये।

उत्तर जिन शास्त्रों में मुख्यतया महापुरुषों की कथाओं और जीवन चरित्र के माध्यम से, संसार की विचित्रता, पुण्य-पाप का फल और महापुरुषों की प्रवृत्तियाँ बताकर जीवों को धर्ममार्ग में लगाया जाता है, वीतरागता की ओर ले जाया जाता है, उन्हें प्रथमानुयोग के शास्त्र कहते हैं। जैसे चौबीसी महापुराण, धर्म परीक्षा, क्षत्रचूड़ामणि आदि। इसे बोधि और समाधि का निधान कहा है।

प्र.3. करणानुयोग का स्वरूप स्पष्ट कीजिये।

उत्तर जिन शास्त्रों में जीवों की और कर्मों की अवस्था बताने के लिये गुणस्थान-मार्गणास्थान आदि की चर्चा मुख्य होती है, तीन लोक संबंधी भूगोल के वर्णन की मुख्यता के साथ ही, गणित की मुख्यता से गणना और माप का वर्णन होता है उन ग्रंथों को करणानुयोग के ग्रंथ कहते हैं। षट्खण्डागम, कषायप्राभृत, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, तिलोयपण्णत्ति आदि करणानुयोग के ग्रंथ हैं।

प्र.4. चरणानुयोग का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

उत्तर गृहस्थों और मुनियों के आचरण की मुख्यता से जिस शास्त्र में स्थूल, बुद्धिगोचर कथन होता है, उसे चरणानुयोग का शास्त्र कहा जाता है। इसमें जीवों को हिंसादि पापों से छुड़ाकर, सुभाषित और नीति शास्त्र की पद्धति से धर्म के अनेक साधनों का निरूपण कर धर्मकार्यों में लगाते हैं, जिससे अज्ञानी जीवों की कषाय मंद होती है, कुगति से बचकर सुगति होती है तथा जिनमत का निमित्त बना रहता है। मूलाचार, भगवती आराधना, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, सागार धर्मामृत आदि ग्रंथ चरणानुयोग के ग्रंथ हैं।

प्र.5. द्रव्यानुयोग का स्वरूप समझाइये।

उत्तर जिस शास्त्र में हेतु, द्रष्टान्त, युक्ति, प्रमाण, नय आदि के माध्यम से छह द्रव्य, सात तत्त्व आदि का तथा स्व-पर भेदविज्ञान इत्यादि का स्वरूप बताकर जीवों को धर्ममार्ग पर लगाया जाता है उसे द्रव्यानुयोग के शास्त्र कहते हैं। इसमें आत्मा की मुख्यता से कथन होता है तथा तत्त्वनिर्णय कराने का उद्देश्य होने से न्याय शास्त्र की शैली मुख्य होती है। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, द्रव्यसंग्रह, समाधिशतक, इष्टोपदेश आदि द्रव्यानुयोग के ग्रंथ हैं।

प्र.6. जिनागम किसे कहते हैं ?

उत्तर तीन लोक में रहने वाले प्राणियों के हित की भावना रखने वाले जिनेन्द्र भगवान के द्वारा जो सन्मार्ग का उपदेश दिया जाता है, वह जिनवाणी कहलाता है। भगवान वीतरागी व सर्वज्ञ होते हैं अतः सम्पूर्ण लोकालोक उनके ज्ञान में झलकता है अतएव उनका उपदेश परम सत्य, प्रामाणिक व सभी जीवों के लिये एक समान हितकारक होता है।

अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर की दिव्य देशना में वर्णित तत्त्व को गणधर भगवंतों के माध्यम से समझकर आचार्य परम्परा में हुये अनेकानेक आचार्यों एवं मुनियों ने लिपिबद्ध किया है जिसे श्रुतपरम्परा कहा जाता है । इसमें सर्वप्रथम आचार्य पुष्पदन्त-भूतबली महाराज ने षटखण्डागम नामक सिद्धान्त ग्रंथ को ताड़पत्र पर लिपिबद्ध किया। यही क्रम आगे चलता रहा और अनेक ग्रंथों की रचना हुयी। इन्हीं ग्रंथों को विषय-वस्तु के भेद से चार भागों में विभाजित किया जाता है।

प्र.7. कृपया अनुयोगों का स्वरूप समझाइये।

उत्तर जिस प्रकार रास्ते पर चलते हुये बालक के गिर जाने पर चोट लगने से वह रोने लगता है, तब माँ उसे चार प्रकार से समझाकर चुप कराने का प्रयास करती है । उसी प्रकार संसार-मार्ग पर गिरे प्राणी को जिनवाणी निम्न चार प्रकार से समझाती है :-

1. अरे! कल तेरी छोटी बहिन गिरी थी, वह नहीं रोई परंतु तू इतना बड़ा होकर रोता है, उठ जल्दी चुप हो जा - प्रथमानुयोग इसी प्रकार महापुरुषों के जीवन चरित्र का आश्रय लेकर समझाता है।

2. अरे! कल जब तेरी बहिन गिरी थी, तब तू हँसा था, ताली बजाई थी। आज तेरे उसी पाप का उदय आ गया । अब चुप हो जा, नहीं तो और पाप बंधेगा - करणानुयोग इसी प्रकार कर्म बंध व उदय बताकर समता रखना सिखाता है।

3. अरे! इतना साफ रास्ता होने पर भी सीधे देखकर नहीं चलता। अब उठो और देखकर चला करो - ऐसा चरणानुयोग बतलाता हैं, साथ ही यह भी बताता है कि व्रतों को अंगीकार करो, पाप छोड़ो, मोक्षमार्ग पर चलो, जिससे संसार पथ पर नहीं गिरोगे।

4. अरे ! क्या हुआ, घोड़ा कूदा, तू तो राजा बेटा है, तू तो गिर सकता ही नहीं, तू क्यों रोता है चुप हो जा - द्रव्यानुयोग ऐसे ही तू आत्मा है, अजर-अमर-अविनाशी है। तू सिद्ध समान है, ऐसा बतलाकर जीव को प्रगट पर्याय से भेदज्ञान कराकर मोक्षमार्ग में लगाता है।

जिनवाणी पढ़ने-सुनने से लाभ -

1. क्रोधादि कषायों की मंदता होती है।
2. पंचेन्द्रिय के विषयों में प्रवृत्ति रुकती है।
3. अति चंचल मन भी एकाग्र होता है।
4. हिंसादि पांच पाप नहीं होते।
5. अल्पज्ञान होने पर भी लोक के चराचर पदार्थों का ज्ञान होता है।
6. हेय-उपादेय की पहचान होती है।
7. आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है।
8. अधिक-अधिक ज्ञान होने पर आनन्द उत्पन्न होता है।
9. लोक में महिमा-यश विशेष होता है।
10. सातिशय पुण्य का बंध होता है।

प्रश्न-

1. अनुयोग किसे कहते हैं ? समझाइये ।
2. प्रथमानुयोग व द्रव्यानुयोग में अंतर बतलाईये ।
3. करणानुयोग व चरणानुयोग में अंतर बतलाईये ।
4. स्वाध्याय से क्या लाभ है ?
5. द्रव्यानुयोग में किस शैली की प्रधानता से कथन होता है ?

पाठ 4

कर्म सिद्धांत

चामुण्डराय - महाराज! यह आत्मा रात-दिन कर्मोदय से दु:खी हो रहा है। यह कर्मों से कैसे छूटे? कृपा कर बताइये।

आचार्य नेमिचन्द - नहीं भाई! आत्मा कर्म के कारण सुखी-दु:खी नहीं होता। जड़-पुद्गल कर्म आत्मा को सुखी-दु:खी नहीं कर सकते। यह आत्मा अपने स्वरूप को नहीं जानकर स्वयं मोह-राग-द्वेष करता है तब यह दु:खी होता है।

चामुण्डराय - तो कर्म के कारण आत्मा को सुख-दु:ख नहीं होता?

आचार्य नेमिचन्द - भाई! कर्म तो केवल निमित्तमात्र है। यह आत्मा अपने ज्ञानानन्द स्वरूप को नहीं पहचानता तथा परपदार्थों में अपनापन करके और उन्हें अच्छा-बुरा जानकर उनके प्रति राग-द्वेष करता है, अपनी इस भूल के कारण यह स्वयं दु:खी होता है तथा इस भूल को सुधार ले तो यह स्वयं सुखी हो सकता है।

चामुण्डराय - महाराज मुझे कर्म सिद्धान्त के संबंध में समझाइये।

आचार्य नेमिचन्द - सुनो! आत्मा में उत्पन्न होने वाले मोह-राग-द्वेष परिणाम भाव कर्म हैं तथा इन भावकर्मों के निमित्त से कार्माण वर्गणाएँ स्वयं कर्म रूप परिणमित होकर आत्मा के साथ सम्बद्ध होती हैं, उसे द्रव्यकर्म कहा जाता है। मन-वचन-काय के अवलम्बन से आत्मा के प्रदेशों में कम्पन होना ही कर्मों के आस्रव का कारण है। ये द्रव्यकर्म घातिया व अघातिया के भेद से 4-4 आठ प्रकार के होते हैं।

चामुण्डराय - महाराज! कृपया इनका स्वरूप समझाने की कृपा करें।

आचार्य नेमिचन्द - जो कर्म जीव के अनुजीवी गुणों का घात करने में निमित्त हो, वे घाति कर्म कहलाते हैं तथा जो कर्म आत्मा के अनुजीवी गुणों

के घात में निमित्त न हों, उन्हें अघातिया कर्म कहा जाता है। घातिया कर्म चार प्रकार के होते हैं।

जब आत्मा स्वयं अपने ज्ञानभाव का घात करता है अर्थात् ज्ञान शक्ति को व्यक्त नहीं करता तब ज्ञानगुण के घात में निमित्त कर्म ज्ञानावरण कर्म कहलाता है। ज्ञानावरण कर्म के उदय में ज्ञान या तो हीनाधिक होता है। मूर्ति पर पड़ा हुआ कपड़ा जिस तरह मूर्ति का ज्ञान नहीं होने देता, वैसे ही ज्ञानावरण कर्म का कार्य है।

दूसरों के गुणों को देखकर भीतर ही भीतर जलना, गुरु का नाम छिपाना, दूसरों के ज्ञान का आदर न करना, पुस्तकें फाड़ देना या छिपा देना तथा पढ़ने में बाधा उत्पन्न करना, किसी के द्वारा पूछने पर नहीं समझाना आदि कार्यों से ज्ञानावरण कर्म का आस्रव होता है।

जब यह आत्मा स्वयं अपने दर्शन गुण का घात करता है, तब जिस कर्म का उदय निमित्त हो, वह दर्शनावरण कर्म कहलाता है। दर्शनावरण कर्म के उदय में बहुत या कम, अथवा गहन निद्रा आना आदि कार्य होते हैं। द्वारपाल जैसे महल में प्रवेश नहीं करने देता, उसी प्रकार दर्शनावरण कर्म के उदय में पदार्थों का सामान्य दर्शन नहीं हो पाता।

ज्ञानावरण कर्म का बंध जिन कारणों से होता है, उन कारणों के अतिरिक्त इन कारणों से भी दर्शनावरण कर्म का बंध होता है। ये कारण हैं - जिनवाणी का अनादर पूर्वक श्रवण करना, बहुत सोना, दिन में सोना, नास्तिकपने की भावना रखना, कुतीर्थ मानने वालों की प्रशंसा करना, दिगम्बर मुनि को देखकर ग्लानि करना इत्यादि। ज्ञानावरण कर्म पांच प्रकार तथा दर्शनावरण कर्म नौ प्रकार का होता है।

जीव जब अपने स्वरूप को भूलकर अन्य को अपना माने या स्वरूपाचरण में असावधानी करे, तब जिस कर्म का उदय निमित्त हो उसे मोहनीय कर्म कहते हैं। इस कर्म के उदय में जैसे शराब पिया हुआ व्यक्ति

कभी माँ को पत्नि कहता है तो कभी पत्नि को माँ कहता है, वैसे ही जीव अपने यथार्थ स्वरूप को नहीं जानता। शरीर को ही जीव मानना, घर-मकान, धन-धान्य आदि संयोगों को अपना मानना, राग-द्वेष परिणाम होना आदि कार्य इस कर्म के उदय के निमित्त से होते हैं। मोहनीय कर्म के दो भेद हैं - (1) दर्शन मोहनीय (2) चारित्र मोहनीय।

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का यथार्थ स्वरूप न जानकर अन्यथा स्वरूप मानना, गुणवान-निर्दोष जनों में दोष लगाना, अपने व पर में कषाय उत्पन्न करना, बहुत बोलना, बहुत हंसना आदि कार्य मोहनीय कर्म के बंध के कारण हैं।

इसी प्रकार जीव के दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य के विघ्न में जिस कर्म का उदय निमित्त हो, उसे अन्तराय कर्म कहते हैं। जैसे खजांची धन नहीं देता, उसी प्रकार वस्तु के सामने होने पर भी उसका ग्रहण, भोग-उपभोग नहीं हो पाता तब अंतराय कर्म का उदय निमित्त कहलाता है। यह पांच प्रकार का होता है।

दूसरों के दान, लाभ, भोग, उपभोग व वीर्य में विघ्न करना, चोरी करना, निर्माल्य ग्रहण करना आदि पाप परिणामों से अन्तराय कर्म का बन्ध होता है।

चामुण्डराय - अब घातिया कर्म के बाद कृपया अघातिया कर्मों के संबंध में भी जानकारी दीजिये।

आचार्य नेमिचन्द - सुनो! अघातिया कर्म भी चार प्रकार के होते हैं। उनका वर्णन निम्नानुसार है :-

जब आत्मा स्वयं मोहभाव द्वारा आकुलता करता है, तब अनुकूलता-प्रतिकूलता रूप संयोग प्राप्त होने में जिस कर्म का उदय निमित्त हो, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। जैसे हीरे में लिपटी तलवार को चाटने पर जीभ कटने से

दु:ख होता है तथा हीरे का मधुर स्वाद आने पर सुख का अनुभव होता है, वैसे ही वेदनीय कर्म के उदय में प्राप्त संयोगों में सुख व दु:ख का अनुभव होता है। इस कर्म के साता वेदनीय व असातावेदनीय नाम के दो भेद हैं।

स्वयं रोना व दूसरों को रुलाना, शोक, पश्चाताप करना, प्राणियों का घात करना आदि असातावेदनीय कर्म के बन्ध के कारण हैं तथा सभी प्राणियों पर दया करना, दान देना, पूजा करना, संयम-व्रतादि धारण करना आदि कार्यों से साता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है।

जीव जब अपनी योग्यता से नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य या देव शरीर में रुका रहे तब जिस कर्म का उदय निमित्त हो, उसे आयुकर्म कहते हैं। जैसे किसी मनुष्य के पैरों में पड़ी बेड़ी उसे कहीं जाने नहीं देती, एक ही स्थान पर स्थिर करके रखती है, उसी प्रकार आयु पूर्ण हुये बिना जीव प्राप्त शरीर को छोड़ नहीं सकता। यह कर्म नरकायु, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु व देवायु के भेद से चार प्रकार का है।

बहुत आरम्भ व परिग्रह रखने के परिणाम से नरकायु का, मायाचारी के परिणाम से तिर्यञ्चायु का, अल्प आरम्भ और परिग्रह के परिणाम से मनुष्यायु का तथा सराग संयम व संयमासंयम रूप शुभ परिणाम से देवायु का बन्ध होता है।

जिस शरीर में जीव हो उस शरीरादि की रचना में जिस कर्म का उदय निमित्त हो, उसे नामकर्म कहते हैं। जैसे चित्रकार चित्र बनाकर उसमें अनेक प्रकार के रंग भरता है, उसी तरह नामकर्म के उदय में काला-गोरा, मोटा-पतला, सुरूप-कुरूप आदि शरीर संबंधी रचनायें होती हैं। इसके शुभ नामकर्म व अशुभ नामकर्म के नाम से दो भेद हैं।

मन-वचन-काय की कुटिलता से अशुभ नाम कर्म का तथा मन-वचन-काय की सरलता से शुभ नाम कर्म का बन्ध होता है।

इसी प्रकार जीव को उच्च या नीच आचरण करने वाले कुल में पैदा होने में जिस कर्म का उदय निमित्त हो, उसे गोत्र कर्म कहते हैं। जैसे कुम्हार अनेक प्रकार के छोटे-बड़े घड़े बनाता है, उसी प्रकार नाम कर्म के उदय से जीव उच्च या नीच कुल में जन्म लेकर उच्च या नीच आचरण में प्रवृत्त होता है। यह उच्चगोत्र कर्म व नीच गोत्र कर्म के भेद से दो प्रकार का होता है।

दूसरों की निंदा करना, अपनी प्रशंसा करना, दूसरे के गुणों को ढाँकना, अपने झूठे गुण प्रगट करना, जातिमद होना आदि से नीच गोत्र कर्म का बंध होता है तथा दूसरे के गुणों की प्रशंसा, अपने गुणों को छिपाना, नम्रवृत्ति आदि से उच्च गोत्र कर्म-बन्ध होता है।

इस तरह इन आठ प्रकार के कर्मों के मुख्य एक सौ अड़तालीस भेद होते हैं, जिन्हें प्रकृति कहा जाता है।

चामुण्डराय - यह तो समझ में आया पर इन कर्मों से छूटने का क्या उपाय है?

आचार्य नेमिचन्द - इन जड़ कर्मों से सदा भिन्न अपनी ज्ञानानन्द स्वभावी आत्मा को जान-पहचानकर व उसमें लीन होने पर अर्हन्त व सिद्ध दशा प्रगट होती है तब ही समस्त कर्मों का भी क्षय हो जाता है अत: कर्म रहित दशा की प्राप्ति के लिये अपनी आत्मा की आराधना करनी चाहिये।

प्रश्न-

1. कर्म किसी कहते है ? वे कितने होते है ।
2. आठों कर्मों का स्वरूप संक्षेप में समझाइये ।

स्वावलंबन दीनता नहीं गौरव है ।

पाठ 5

लोक संरचना

अनुज – सहज ! सुना तुमने, वैज्ञानिकों ने सारी दुनिया की खोज कर ली है, उन्हें स्वर्ग-नरक कहीं नहीं मिला। अब पुण्य-पाप करने की तो कोई बात ही नहीं रही।

सहज – नहीं भाई ! वैज्ञानिक तो मात्र बहुत छोटे हिस्से को दुनिया कहते हैं। स्वर्ग-नरक तो ऊर्ध्व लोक और अधोलोक में हैं। वहाँ तक तो वैज्ञानिक पहुँच भी नहीं सकते।

अनुज – अच्छा !

सहज – हाँ भाई ! वैज्ञानिक तो उन यंत्रों के माध्यम से खोज करते हैं, जो सब कुछ जान नहीं सकते जबकि हमारे वीतरागी सर्वज्ञ अरहन्त परमेष्ठी के केवलज्ञान में तो सम्पूर्ण चराचर लोक हथेली पर रखे स्पष्ट दिखते हुये पदार्थ के समान झलकता है और वही स्वरूप भगवान की देशना में आता है, जिसका वर्णन हमारे शास्त्रों में किया गया है अत: सर्वज्ञ भगवान की कही गई बातों पर ही विश्वास करना चाहिये।

अनुज – तो भगवान ने लोक का स्वरूप कैसा बताया है?

सहज – अनंत आकाश के मध्य में जहाँ जीवादि छ: द्रव्य रहते हैं, उसे लोकाकाश कहते हैं। इसका आकार दोनों पैर फैलाकार कमर पर हाथ रखे हुए – पंक्तिबद्ध खड़े, सात पुरुषों जैसा है। यह लोकाकाश सभी ओर से क्रमश: घनोदधि वातवलय, घनवातवलय व तनुवातवलय से घिरा है। इस लोक को ही विश्व, दुनिया, जगत, World आदि कहा जाता है।

लोकाकाश के तीन भेद – ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक व अधोलोक हैं।

लोकाकाश के बीचों बीच एक राजू लम्बी, एक राजू चौड़ी और चौदह राजू ऊंची लोक त्रस नाड़ी है, जिसमें ही त्रस जीव पाये जाते हैं, तथा लोकनाड़ी के बाहर का क्षेत्र निष्कुट क्षेत्र कहलाता है, जहाँ मात्र स्थावर जीव ही रहते हैं।

ऊर्ध्वलोक में स्वर्ग हैं, जहाँ देवगण निवास करते हैं । ये स्वर्ग क्रमशः एक के ऊपर एक, दो-दो के जोड़े से स्थित हैं। पहले आठ जोड़ों में सोलह स्वर्ग हैं, जिनके नाम हैं - सौधर्म-ऐशान, सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, सतार-सहस्रार, आनत-प्राणत, आरण-अच्युत। इनके ऊपर नौ ग्रैवियक, नौ अनुदिश और पांच अनुत्तर विमान हैं । सर्वार्थसिद्धि इन्हीं पाँच अनुत्तर विमानों में अन्तिम विमान है । ये सभी स्वर्ग के भेद हैं । सर्वार्थसिद्धि के ऊपर सिद्धशिला है, जहाँ अनंत सिद्ध विराजमान हैं।

अनुज - यह ऊर्ध्वलोक की रचना हुई, मध्यलोक की रचना किस प्रकार की है?

सहज - सुनो भाई! जहाँ हम और तुम रहते हैं, यह मध्यलोक है। मध्यलोक के बीचोंबीच थाली के आकार का गोल जम्बूद्वीप है। जिसे घेरे हुए चूड़ी के समान गोलाकार असंख्यात समुद्र व द्वीप हैं। जम्बूद्वीप के बाद लवण समुद्र, उसके बाद घातकी खण्ड द्वीप फिर कालोदधि समुद्र, फिर पुष्करवर द्वीप है और फिर पुष्करवर समुद्र इसी प्रकार असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं। पहला जम्बूद्वीप, दूसरा घातकीखण्ड द्वीप व तीसरे पुष्करवर द्वीप का आधा भाग मिलाने पर ढाई द्वीप हो जाते हैं। मनुष्य गति के जीव इसी ढाई द्वीप के भीतर ही रहते हैं, इसके बाहर नहीं। पुष्करवर द्वीप के बीचों-बीच चूड़ी के आकार जैसा मानुषोत्तर पर्वत है। मनुष्य लोक की सीमा इसी

असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं । पश्चात् सबसे अंत में स्वयंभूरमण द्वीप व समुद्र है। इस द्वीप व समुद्र में ही उत्कृष्ट अवगाहना वाले तिर्यञ्च जीव पाये जाते हैं। मध्यलोक को तिर्यक् लोक भी कहा जाता है।

अनुज - तो फिर विदेह क्षेत्र और नन्दीश्वर द्वीप कहां पर स्थित है?

सहज - बताता हूँ! सुनो, नंदीश्वर द्वीप इसी मध्यलोक में जम्बूद्वीप के बाद आठवें नम्बर का द्वीप है । वहाँ 52 अकृत्रिम जिनालय हैं, जहाँ देवतागण पूजन करने जाते हैं।

अनुज - हम-तुम नहीं जा सकते क्या?

सहज - अभी बताया था कि मनुष्य लोक की सीमा तो ढाई द्वीप तक ही है अत: नंदीश्वर द्वीप में देवतागण ही दर्शन-पूजन को जा सकते हैं हम मनुष्य नहीं।

अनुज - और विदेह क्षेत्र में हम जा सकते हैं क्या?

सहज - विदेह क्षेत्र मनुष्य लोक के भीतर ही है। ढाई द्वीप में विदेह क्षेत्र है, जहाँ सीमंधर स्वामी आदि बीस तीर्थंकर भगवान विराजमान हैं। ढाई द्वीप में पांच भरत क्षेत्र, पांच ऐरावत क्षेत्र व पांच विदेह क्षेत्र हैं। हम-तुम जम्बूद्वीप संबंधी दक्षिण भरतक्षेत्र में निवास करते हैं। इसी जम्बूद्वीप के बीचोंबीच सुमेरु पर्वत है जहाँ पर तीर्थंकरों के जन्म के बाद इन्द्र अभिषेक करते हैं। यह सुमेरुपर्वत एक लाख योजन ऊँचा है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, प्रकीर्णक व तारे मनुष्य लोक में इसी सुमेरुपर्वत की परिक्रमा देते हैं। इन ज्योतिषी देवों के विमानों की सुमेरु पर्वतों की परिक्रमा की स्थिति से ही रात-दिन का परिवर्तन होता है।

अनुज - अच्छा! और अधोलोक में फिर रात-दिन कैसे होता है?

सहज - अधोलोक मध्यलोक के नीचे है। अधोलोक में सात नरक हैं, जिनके नाम हैं - रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुका-प्रभा, पंक-प्रभा, धूम-प्रभा, तम:-प्रभा, महातम:-प्रभा। ये सातों नरक क्रमश: एक के नीचे एक हैं। ये नारकी जीवों के रहने की बस्तियाँ हैं। जो जीव पाप परिणाम या पाप कार्य में प्रवृत्त होते हैं, वे मरकर नरक में पैदा हो जाते हैं। यहाँ रात-दिन का विभाग नहीं होता। ये बस्तियाँ बहुत ही दु:खद हैं, रहने का स्थान भी बिलो के सदृश है। यहाँ का वातावरण बेहद ही दूषित है। यहां रहने वाले जीवों के कषाय की तीव्रता होने के कारण वे निरन्तर आपस में मारकाट किया करते हैं। वहाँ घोर सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि अपार महाकष्ट जीव को निरन्तर भोगना पड़ते हैं, आयु भी लम्बी होती है। नरक दु:खों का घर ही है। अत: हमें सदैव पाप के कार्यों से बचना चाहिए।

यह अधोलोक त्रासन के आकार का, मध्यलोक झालर के आकार वाला और ऊर्ध्वलोक मृदंग के आकार का होता है।

अनुज - और .....।

सहज - अभी बस इतना ही। यह लोक का सामान्य स्वरूप है। विशेष रूप से जानना हो तो तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार आदि ग्रंथों से जानना चाहिये।

प्रश्न-

1. जिनागम के अनुसार लोक का क्या स्वरूप है ।
2. उर्ध्व लोक व अधोलोक में क्या अंतर है ?
3. हम-तुम (मनुष्य) जहां रहते हैं, वह कौन सा लोक है ? उसका स्वरूप क्या है ?

पाठ 6

अगृहीत और गृहीत मिथ्यात्व

श्रोता - कृपया सहझाइये कि हमारे आत्मा का हित किस बात में है? अनादि से संसार दशा में भटक रहे हमारे आत्मा को दुःख से छुटकारा कैसे मिलेगा?

प्रवचनकार - यह आपने अच्छा प्रश्न पूछा। अपने आत्मा के हित की बात भव्य प्राणियों के चित्र में ही उठती है। आत्मा का हित निराकुलता प्राप्त करने में है अर्थात् पूर्ण सुख स्वरूप अरहंत व सिद्ध दशा प्राप्त करने में है। कहा भी है -

आतम को हित है सुख, सो सुख आकुलता बिन कहिये॥

सिद्ध दशा को प्राप्त हो जाने पर चतुर्गति भ्रमण रूप संसार का भी अभाव हो जाता है।

श्रोता - ऐसी सिद्ध दशा की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

प्रवचनकार - ऐसी पूर्ण सुख रूप सिद्ध दशा की प्राप्ति मिथ्यात्व के अभावपूर्वक ही होती है। संसार में परिभ्रमण करने का कारण भी यह मिथ्यात्व ही है। छहढाला जी में कहा भी है -

ऐसे मिथ्या दृग-ज्ञान-चर्णवश, भ्रमत भरत दुःख जन्म मर्ण॥

अर्थात् यह जीव मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र के वश होकर संसार में घूमता हुआ जन्म-मरण के दुःख उठा रहा है।

श्रोता - यह मिथ्यात्व क्या है?

प्रवचनकार - मिथ्यात्व अर्थात् विपरीत मान्यता। जीव की अनादिकाल से अपने तथा पर के संबंध में विपरीत मान्यता चल रही है। इसे

ही मिथ्या दर्शन या मिथ्या श्रद्धा भी कहते हैं। जीव-अजीव आदि सात तत्त्वों को जैसे हैं, वैसे न मानकर उन्हें उल्टा मानना ही विपरीत श्रद्धा है। कहा भी है -

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधें तिनमाँहि विपर्ययत्व॥

मिथ्यात्व अर्थात् मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र। अर्थात् विपरीत मानना, विपरीत जानना और विपरीत आचरण। यह मिथ्यात्व दो प्रकार का होता है।

श्रोता - वे दो प्रकार कौन-कौन से हैं?

प्रवचनकार - यह मिथ्यात्व अगृहीत मिथ्यात्व व गृहीत मिथ्यात्व के भेद से दो प्रकार का होता है।

श्रोता - कृपया इनका स्वरूप समझाइये।

प्रवचनकार - सुनिये। जो मिथ्यात्व बिना सीखे/सिखाये ही अनादिकाल से इस जीव के साथ चल रहा है, उसे अगृहीत मिथ्यात्व कहते हैं। अ = नहीं, गृहीत = ग्रहण किया, सीखा; मिथ्या - असत्य/विपरीत, त्व - भाव/पना। अनादि से ही अपने ज्ञानानन्द स्वभावी भगवान आत्मा को अपनत्व रूप से स्वीकार नहीं करने के कारण, शरीर आदि पर पदार्थों के प्रति बिना सीखे/सिखाये होने वाले एकत्व-ममत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्त्व आदि रूप विपरीत मान्यता, विपरीत ज्ञान व विपरीत आचरण को अगृहीत मिथ्यात्व कहते हैं। विपरीत श्रद्धा के साथ ही जीवादि सात तत्त्वों संबंधी विपरीत ज्ञान अथवा अज्ञान तथा पंचेन्द्रिय के विषयों में सुख की लालसापूर्वक जो प्रवृत्ति चल रही है, यह ही अगृहीत मिथ्याज्ञान तथा अगृहीत मिथ्याचारित्र है।

श्रोता - यह तो अगृहीत मिथ्यात्व का स्वरूप हुआ। कृपया, गृहीत मिथ्यात्व का स्वरूप भी समझाइये।

प्रवचनकार - उपर्युक्त अगृहीत मिथ्यात्व जिन कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र आदि के उपदेश से अथवा अन्यान्य कारणों - परिस्थितियों से अधिक पुष्ट होता है, उन पुष्ट करने वाले कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र आदि को, अन्यान्य कारणों-परिस्थितियों को हितकर मानना, पूज्य मानना, अपना कर्ता-धर्ता-हर्ता मानना गृहीत मिथ्यादर्शन है तथा ऐसा ही जानना गृहीत मिथ्याज्ञान है तथा तदनुरूप उनकी भक्ति, पूजा, संगति आदि प्रवृत्तिरूप आचरण ही गृहीत मिथ्याचारित्र है। गृहीत = नया ग्रहण किया हुआ, नवीन सीखा हुआ।

श्रोता - इसी मिथ्यात्व का फल संसार है।

प्रवचनकार - हाँ! अनादिकाल से यह जीव इस मिथ्यात्व से ग्रसित होकर नित जन्म-मरण करते हुये प्राप्त देह आदि संयोगो में ही अपनापन करके तथा उन्हें ही अपना सर्वस्व मानकर निरन्तर राग-द्वेष, कषायें किया करता है तथा कभी धर्मसाधन के लिये भी प्रवृत्ति करता है तो मिथ्या/कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की भक्ति से खोटे तप, मिथ्या आचरण में प्रवृत्ति करता है। कहा भी है -

जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करन विविध- विध देह दाह।

आतम-अनात्म के ज्ञान बिना तपादि रूप जो भी विविध प्रकार का आचरण है । वह मान, यश, पूजा या किसी लौकिक लाभ पाने की आज्ञा से होता है। इतना ही नहीं, कभी कदाचित् मंद कषाय से यह जीव जिनलिंग को भी धारण करता है तो भेदविज्ञान रूप आत्मज्ञान के अभाव में उस श्रावक-मुनि दशा रूप परिणाम से यह स्वर्गादि गति तो प्राप्त कर लेता है परन्तु मोक्षदशा को प्राप्त नहीं कर पाता। इस प्रकार मिथ्यात्व का फल संसार ही है।

श्रोता - यह मिथ्यात्व छूटे कैसे?

प्रवचनकार - सर्वप्रथम तो सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का सच्चा स्वरूप समझकर उनके प्रति अपार भक्ति, पूजा, समर्पण भाव पूर्वक उनके बताये मार्ग

को ही हितकारी जानना/समझना चाहिये, जिससे गृहीत मिथ्यात्व का अभाव होगा तथा इन्हीं देव-शास्त्र-गुरु द्वारा प्रणीत सात तत्त्वों की अच्छी समझ पूर्वक अपनी आत्मा के श्रद्धान-ज्ञान-आचरण द्वारा अग्रहीत मिथ्यात्व का भी अभाव होगा और सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होगा, जो मोक्ष का कारण है। अत: हमें सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धापूर्वक तत्त्वाभ्यास करना चाहिए।

श्रोता - आपने अच्छा समझा दिया। अब हम भी ऐसा ही अभ्यास करेंगे।

नोट - पाठ में दिये पद श्री छहढाला जी ग्रंथ से लिये गये हैं।

प्रश्न-

1. मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?
2. गृहीत व अगृहीत मिथ्यात्व में अंतर बताइये ।
3. अनादिकाल से कौन सा मिथ्यात्व चला आ रहा है ।
4. मिथ्यात्व का अभाव कैसे हो सकता है ।

श्रेष्ठ जीवन की आधारशिला श्रेष्ठ चिंतन है ।

कम बोलो, धीरे बोलो, अच्छा बोलो ।

बुद्धिमान बोलने के पहले सोचता है, मूरख बाद में ।

पाठ 7

क्या आप जानते हैं
सप्त व्यसन

1. व्यसन से आप क्या समझते हैं?

उत्तर किसी भी विषय में लवलीन होना अर्थात् आदत को व्यसन कहते हैं। यहाँ बुरे विषय में लीन होने को व्यसन कहा जा रहा है। व्यसन अर्थात् खोटी आदत। एक बार यह खोटी आदत लग जाती है तो इसे छोड़ना अत्यन्त मुश्किल होता है।

2. व्यसन कितने होते हैं?

उत्तर निश्चय से (वास्तव में) तो जो आत्मा के स्वरूप को भुला दें, वे मिथ्यात्व से युक्त राग-द्वेष परिणाम ही व्यसन हैं, जो आकुलता उत्पन्न करके संसार बढ़ाते हैं। व्यवहार से व्यसन के सात भेद होते हैं - जुआ खेलना, मांस सेवन, मदिरापान, वेश्यागमन, शिकार खेलना, चोरी और परस्त्री सेवन। ये सभी व्यसन जीव को दुराचारी बनाते हैं और इनसे तीव्र पाप-बंध होता है। द्रव्य व भाव के भेद से ये सभी दो-दो प्रकार के होते हैं।

3. जुआ व्यसन क्या है?

उत्तर हार-जीत पर द्रष्टि रखते हुये रुपये-पैसे या किसी प्रकार के धन से कोई भी खेल खेलना या शर्त लगाकर कोई काम करना या दांव लगाकर अधिक लाभ की आशा या हानि का भय होना, बिना मेहनत ज्यादा धन की आशा से किया गया - ऐसे सभी कार्य द्रव्य जुआ हैं। सट्टेबाजी, ताशपत्ती, लॉटरी, घुड़दौड़, शेयर में निवेश आदि इसके उदाहरण हैं। जुआ खेलने वाले जुआरी कहलाते हैं। पकड़े जाने पर सरकार भी इनको दण्ड देती है।

शुभ में जीत अर्थात् पुण्योदय में हर्ष तथा अशुभ में हार अर्थात् पापोदय में विषाद मानना भाव जुआ व्यसन है। इस मान्यता का त्याग सच्चा जुआ त्याग है।

4. माँस सेवन व्यसन क्या है?

उत्तर मारकर या मरे हुये जीवों का कलेवर खाने में आसक्त रहना एवं भक्षण करना द्रव्य माँस व्यसन है। अण्डा, मछली, माँस तथा इन पदार्थों को मिलाकर बनी चॉकलेट, टॉफी, पेस्ट्री, पिज्जा, बर्गर आदि खाना भी द्रव्य माँस सेवन व्यसन में गिना जायेगा।

देह में मगन रहना अर्थात् शरीर के पुष्ट होने पर अपना हित मानना एवं शरीर के दुबले-पतले होने पर स्वयं को हीन देखना यह भाव माँस सेवन व्यसन है।

5. मदिरापान व्यसन क्या है?

उत्तर शराब, माँस, चरस, गांजा आदि सभी नशीले पदार्थ, जिनके सेवन से व्यक्ति होश खो बैठता है, उनका सेवन करना द्रव्य मदिरापान व्यसन है। इनके सेवन से व्यक्ति का विवेक, बुद्धि, बल, धन, प्रतिष्ठा आदि सभी कुछ नष्ट हो जाता है।

मोह में पड़कर अपने आत्मस्वरूप से अनजान रहना, अपने को आत्मा नहीं जानना भाव मदिरापान व्यसन है।

6. वेश्यागमन व्यसन क्या है?

उत्तर वेश्या से रमना, उसके घर आना-जाना, उससे संबंध रखना द्रव्य वेश्यागमन व्यसन है।

अपनी बुद्धि को अपने आत्मा को जानने में न लगाकर विषय-भोग आदि सांसारिक कार्यों में ही लगाये रखना भाव वेश्यागमन व्यसन है।

द्रव्य वेश्यागमन से अनेक दुर्गुण तथा रोगादि उत्पन्न होते हैं, प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती है तथा भाव वेश्यागमन से निगोद रूपी अनंत संसार खड़ा हो जाता है।

7. शिकार व्यसन क्या है?

उत्तर मनोरंजन के लिये जंगल के रीछ, बाघ-हिरण आदि प्राणियों तथा पक्षियों को निर्दयी होकर अस्त्र-शस्त्र आदि किसी भी प्रकार से मारना व मारकर आनंदित होना द्रव्य शिकार व्यसन है। वीडियो गेम या चित्र आदि में पशु-पक्षियों को मारना शिकार खेलने में आयेगा।

तीव्र रागवश ऐसे हिंसादि कार्यों द्वारा अपने चैतन्यप्राणों का घात करना भाव शिकार व्यसन है।

8. परस्त्रीसेवन व्यसन क्या है?

उत्तर अपनी धर्मानुकूल विवाहिता स्त्री के अतिरिक्त अन्य स्त्री,स्त्रियों के साथ रमण करना, उनके साथ अनुचित व्यवहारपूर्वक अपनी वासना की पूर्ति करना द्रव्य परस्त्रीसेवन व्यसन है।

तत्त्वों को समझने का यत्न न करके दूसरों की बुद्धि परखने में अपनी बुद्धि लगाना भाव परस्त्रीसेवन व्यसन है।

9. चोरी व्यसन क्या है?

उत्तर किसी पराई वस्तु को उसके स्वामी की आज्ञा बिना ग्रहण कर लेना अथवा बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण कर लेना द्रव्य चोरी व्यसन है।

मोहभाव से परवस्तु के साथ साझेदारी की चाह करना (अपनापन रखना) भाव चोरी व्यसन है।

10. इन सात व्यसनों का त्याग क्यों आवश्यक है?

उत्तर उक्त सात व्यसनों के त्याग बिना आत्मस्वरूप को प्राप्त करना असंभव है तथा इन सातों व्यसनों के फल में नरक-निगोद आदि दुर्गतियों में जाकर अनंतकाल के लिये संसार में परिभ्रमण करना पड़ता है अत: इन सात व्यसनों को दूर से ही त्याग देना चाहिये। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धापूर्वक अपने आत्मस्वभाव की रुचि में व्यसन सहज ही छूट जाते हैं। अत: ज्ञानाभ्यास करके अपने आत्मा को जानने का प्रयत्न करना चाहिए।

विदेह क्षेत्र के विहरमान बीस तीर्थंकर

1. श्री सीमन्धर स्वामी जी
2. श्री युगमन्धर स्वामी जी
3. श्री बाहु स्वामी जी
4. श्री सुबाहु स्वामी जी
5. श्री संजातक स्वामी जी
6. श्री स्वयंप्रभ स्वामी जी
7. श्री ऋषभानन स्वामी जी
8. श्री अनन्तवीर्य स्वामी जी
9. श्री सूरप्रभ स्वामी जी
10. श्री विशाल कीर्ति स्वामी जी
11. श्री वज्रधर स्वामी जी
12. श्री चन्द्रानन स्वामी जी
13. श्री भद्रबाहु स्वामी जी
14. श्री भुजंगम स्वामी जी
15. श्री ईश्वर स्वामी जी
16. श्री नेमिप्रभ स्वामी जी
17. श्री वीरसेन स्वामी जी
18. श्री महाभद्र स्वामी जी
19. श्री देवयश स्वामी जी
20. श्री अजितवीर्य स्वामी जी

कर्तव्य का पाठ सब पाठों में सबसे महत्वपूर्ण है ।

पाठ 8

हमारे पर्व

पर्व अर्थात् विशिष्ट काल। जिस काल में सांसारिक कार्यों से विशेष निवृत्ति पूर्वक धर्मकार्यों में विशेष उत्साहपूर्वक जो प्रवृत्ति होती है, उस काल को पर्व कहा जाता है। पर्व अर्थात् मंगल काल, पवित्र अवसर। वास्तव में तो अपने आत्म-स्वभाव की प्रतीतिपूर्वक वीतरागी दशा का प्रगट होना ही यथार्थ रूप में पर्व है क्योंकि वही आत्मा के लिये मंगलकारी और पवित्र अवसर है। पर्व शब्द का एक अर्थ गाँठ या जोड़ भी होता है। अपनी परिणति को अपने आत्मा में जोड़ना ही पर्व है।

स्पष्ट है कि पर्व आत्म-आराधना के लिये विशेष अवसर हैं। अत: जैनियों के पर्व संयममय होते हैं; खाने, खेलने और मस्ती करने के नहीं। पर्व के दिनों में स्वाभाविक रूप से कषाय की मंदता होती है अत: पर्व के दिनों में सभी सांसारिक कार्यों से विशेष निवृत्ति लेकर हमें जिनेन्द्र भगवान के दर्शन-पूजन-भक्ति पूर्वक स्वाध्याय,संयम आदि में विशेष प्रवृत्ति करना चाहिये। पर्वकाल में पापकार्यों से भी बचना चाहिए क्योंकि पर्वकाल में किये हुये पापों का फल विशेष दु:खदायी होता है।

पर्व दो प्रकार के होते हैं :-

(1) शाश्वत पर्व (2) तात्कालिक पर्व

इनका विशेष वर्णन इस प्रकार है :-

(1) शाश्वत पर्व - जो पर्व अनादिकाल से चले आ रहे हैं तथा अनन्तकाल तक चलते रहेंगे, वे शाश्वत पर्व कहलाते हैं। ये पर्व नैसर्गिक कहलाते हैं तथा बिना किसी घटना के निमित्त से स्वयमेव ही मनाये जा रहे हैं। निम्न पर्व शाश्वत पर्व गिने जाते हैं -

(i) अष्टमी-चतुर्दशी - प्रत्येक माह (हिन्दी तिथि दर्पण) में दो अष्टमी तथा दो चतुर्दशी, ऐसे कुल चार दिवस पर्व के होते हैं।

(ii) अष्टान्हिका महापर्व - अष्ट = आठ, अन्हि = दिन, अर्थात् आठ दिनों तक चलने वाला पर्व। यह वर्ष में तीन बार कार्तिक, फाल्गुन व आषाढ़ माह के अंतिम आठ दिनों में अष्टमी से पूर्णिमा तक मनाया जाता है। यह सबसे बड़ा पर्व कहा गया है। इस पर्व में देवता गण नन्दीश्वर द्वीप जाकर वहाँ के अकृत्रिम चैत्यालयों में विशेष पूजन भक्ति करते हैं। अत: इसे नन्दीश्वर पर्व भी कहा जाता है। हम नन्दीश्वर द्वीप नहीं जा सकते अत: यहीं पर भगवान की दर्शन-पूजन भक्ति आदि करके पर्व मनाते हैं।

(iii) सोलहकारण महापर्व - सोलहकारण महापर्व वर्ष में तीन बार आते हैं। इस महापर्व में तीर्थंकर नामकर्म संबंधी सोलह कारण भावनाओं के विशेष चिंतनपूर्वक भगवान की पूजा-भक्ति की जाती है।

(iv) दशलक्षण महापर्व - यह पर्व भी वर्ष में तीन बार आता है किन्तु वर्ष में एक बार भाद्रपद मास की पंचमी से लेकर चतुर्दशी तक कुल दस दिन अत्यन्त उत्साहपूर्वक मनाया जाता है। दशलक्षण महापर्व में सम्पूर्ण जैन समाज का उत्साह विशेष होता है। उत्तम क्षमा आदि दशधर्मों के माध्यम से अपनी आत्मा की आराधना करना ही दशलक्षण पर्व मनाने का प्रयोजन है।

(v) रत्नत्रय पर्व - ये पर्व भी वर्ष में तीन बार आते हैं।

के तीन दिवसों में ये पर्व मनाये जाते हैं सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय की आराधनापूर्वक अपने आत्मा की आराधना इस पर्व में की जाती है।

उपर्युक्त सभी शाश्वत पर्व निज आत्मा की आराधना के निमित्तभूत हैं

अत: हमें भी निज आत्मा की आराधनापूर्वक वीतरागभाव प्रगट करने का ही अभ्यास करना चाहिए। भगवान की पूजन-भक्ति तथा एकाशन या उपवास कर लेना मात्र ही पर्व नहीं है अपितु इन क्रियाओं के निमित्त से सांसारिक राग को घटाकर, विशेष स्वाध्याय, तत्त्वचर्चा, संयम के द्वारा निज आत्मा की आराधना करना ही पर्व का सही तरीका है।

2. तात्कालिक पर्व -

किसी घटना विशेष से संबंधित पर्व तात्कालिक पर्व कहलाते हैं जैसे दीपावली, महावीर जयन्ती आदि। ये पर्व शाश्वत नहीं होते। घटना विशेष से संबंधित होने के कारण निश्चित समय सीमा के अंदर ही इन पर्वों का प्रचलन होता है। कुछ प्रमुख तात्कालिक पर्व निम्न हैं :-

(i) महावीर जयन्ती - यद्यपि सभी तीर्थंकरों का जन्म कल्याणक होता है परन्तु भगवान महावीर हमारे अन्तिम तीर्थंकर एवं वर्तमान जैन शासन के नायक होने के कारण उनका जन्मदिवस विशेष उत्साहपूर्वक मनाया जाता है। इस दिन प्रभात फेरी, शोभायात्रा, गोष्ठी आदि का विशेष आयोजन किया जाता है।

(ii) दीपावली - यह पर्व भी भगवान महावीर के निर्वाण कल्याणक के रूप में मनाया जाता है। कार्तिक कृष्ण अमावस्या के दिन भगवान महावीर का निर्वाण हुआ था अत: इस दिन उनकी पूजन करके निर्वाण लाडू चढ़ाये जाते हैं और उनके समान सिद्ध पद प्राप्त करने की भावना भायी जाती है। इस दिन से जैनियों का नया वर्ष भी आरम्भ होता है, जिसे वीर निर्वाण संवत् कहा जाता है। यह तिथि दर्पण विश्व का सबसे प्राचीन तिथि दर्पण है।

(iii) रक्षाबंधन - तीर्थंकर अरनाथ के शासनकाल में राजा बलि ने अकंपनाचार्य आदि सात सौ मुनियों पर भीषण उपसर्ग किया था। इस उपसर्ग

के दूर होने के उपलक्ष्य में ही यह पर्व मनाया जाता है। इस दिन मुनिराजों की पूजन करके जिनमार्ग पर चलने का एवं जिनधर्म, जिनायतन व साधर्मियों पर उपसर्ग के समय अपने प्राणों की परवाह किये बिना उनकी रक्षा का संकल्प लिया जाता है। इसी संकल्प को याद रखने के निमित्त रक्षासूत्र बांधा जाता है।

इनके अतिरिक्त अक्षयतृतीया, श्रुतपंचमी, वीरशासन जयन्ती, मोक्ष सप्तमी (भगवान पार्श्वनाथ निर्वाण दिवस) आदि पर्व भी तात्कालिक पर्व हैं, जो अपनी-अपनी तिथियों में मनाए जाते हैं।

उक्त सभी पर्वों का उद्देश्य तो संयमपूर्वक रहकर आत्म-आराधना करना ही है, परन्तु अज्ञानता वश कुछ लोग खाना-खेलना आदि लौकिक क्रियाओं में उलझकर पर्व मनाते हैं तो वहीं कुछ लोग पूजन-उपवास आदि क्रियाओं के माध्यम से अपनी लौकिक कामनाओं की पूर्ति करना चाहते हैं। उपर्युक्त दोनों ही बातें पाप बंध में कारण हैं क्योंकि चाहे खाने-खेलने के परिणाम हों अथवा भगवान की भक्ति से लौकिक इच्छापूर्ति के परिणाम, दोनों ही परिणाम तीव्र अशुभभाव होने से पापबन्ध के ही कारण हैं। भगवान स्वयं वीतराग विज्ञानमय है, अत: उनके भक्त को भी वीतरागता की ही भावना होती है परन्तु उनके प्रति होने वाले भक्ति भाव के परिणाम से सहज ही अपार पुण्य का संचय होता है, जिसके फल में लौकिक अनुकूलताएँ भी सहज ही प्राप्त होती हैं। अत: हमें पर्वों का वास्तविक स्वरूप व प्रयोजन समझकर यथाशक्ति संयम व साधनापूर्वक उन्हें मनाना चाहिए।

प्रश्न-

1. पर्व का स्वरूप क्या है व कैसे मनाना चाहिये ?
2. शाश्वत व तात्कालिक पर्व में क्या अंतर है ?
3. क्या पर्व खेलने-खाने व घूमने-फिरने के लिये है ?

कथा खंड

रक्षाबंधन

भगवान अरनाथ तीर्थंकर के शासनकाल में उज्जैन में राजा श्रीवर्मा राज्य करते थे। उनके चार मंत्री थे - जिनके नाम बलि, नमुचि, प्रहलाद और बृहस्पति थे।

एक बार अकंपनाचार्य अपने संघ के सात सौ दिगम्बर मुनिराजों के साथ उज्जैन नगर पहुँचे। राजा चारों मंत्रियों व प्रजाजनों के साथ उनके दर्शन के लिये पहुँचे । उस समय मुनिराज आत्मध्यान में मग्न थे अत: तत्त्वचर्चा उपदेश का कोई प्रसंग नहीं बना। उसी समय श्रुतसागर मुनिराज आहार लेकर वापिस आ रहे थे। चारों मंत्री जिनधर्म से चिढ़ते थे अत: मुनिराज से द्वेषभाव वश वे बहस करने लगे, तब मुनिराज ने अपनी प्रबल युक्तियों से उत्तर देकर उनका मान खंडित कर दिया। श्रुतसागर मुनिराज ने इस प्रसंग की चर्चा अकंपनाचार्य से की तो उन्होंने किसी अनिष्ट की आशंका से श्रुतसागर मुनिराज को वाद-विवाद के स्थान पर ही खड़े रहकर ध्यान करने को कहा। अपने अपमान से तिलमिलाए चारों मंत्री द्वेषवश रात्रि में वहाँ पर आये और उन्होंने मुनिराज को मारने के उद्देश्य से तलवार का प्रहार करना चाहा परन्तु उनके हाथ कीलित होकर रह गए। प्रात:काल इस घटना का पता चलने पर राजा ने चारों मंत्रियों को देश निकाला दे दिया।

वे चारों मंत्री हस्तिनागपुर के राजा पद्मराय के यहाँ जाकर कार्य करने लगे। किसी बात पर प्रसन्न होकर राजा पद्मराय ने उन्हें वरदान मांगने कहा तब चारों ने उसे यथासमय ले लेने की अनुमति ले ली।

एक बार अकंपनाचार्य आदि सात सौ मुनिराजों का संघ विहार करता हुआ हस्तिनागपुर पहुँचा। यह देख बलि ने राजा पद्मराय के द्वारा दिए गए वरदान के रूप में सात दिन का राज्य मांगा। राज्य पाकर बलि उन सात सौ

मुनिराजों पर घोर उपसर्ग करने लगा। उसने मुनिराजों के चारों तरफ बाड़ी लगवाकर यज्ञ रचाया, जिसमें अग्नि में जानवरों के साथ-साथ विभिन्न प्रकार की सामग्री जलाई गयी, जिसके धुंये से मुनिराजों के शरीर जलने लगे तथा सांसे रुंधने लगीं, पर धन्य हैं वे अकंपनाचार्य आदि सात सौ मुनिराज, जो इस भीषण घोर उपसर्ग के बावजूद ध्यानमग्न रहकर आत्म-साधना में अचल रहे तथा उनके चित्त में बलि आदि किसी के प्रति भी क्रोध या रोष का परिणाम तक नहीं आया।

उसी समय राजा पद्मराय के भाई मुनि विष्णुकुमार जो पहिले मुनि हो गये थे, उन्हें इस उपसर्ग का पता चला तो उनके हृदय में मुनियों के प्रति वात्सल्य भाव जागृत हो उठा और उन्हें उन सात सौ मुनिराजों को उपसर्ग से बचाने का परिणाम आया। उन्हें विक्रिया ऋद्धि सिद्ध हो गयी थी। वे मुनिपद में रहकर इस कार्य को नहीं कर सकते थे अत: उन्होंने मुनिपद त्यागकर एक बामनिया ब्राह्मण का वेश बनाया। वे ब्राह्मण वेश में बलि के पास आये। बलि ने उनसे इच्छानुसार वस्तु मांगने की प्रार्थना की। तब उन्होंने तीन पग भूमि मांगी और जब बलि ने तीन कदम भूमि देना स्वीकार कर लिया तो उन्होंने अपने शरीर को विक्रिया ऋद्धि से बढ़ा लिया और समस्त भूमि को दो पगों में ही नाप लिया तथा तीसरा पग बलि के ऊपर रखने लगे, तब बलि ने उनसे क्षमायाचना की। इस तरह उन्होंने बलि को परास्त कर मुनियों की रक्षा की। वह दिन श्रावण की पूर्णिमा का था। अत: उस दिन से रक्षाबंधन पर्व चल पड़ा। उपसर्ग निवारण के बाद नगरजनों ने मुनिराजों की वैयावृत्ति की तथा उनके योग्य सिमैये की खीर आदि पदार्थों का आहार दिया तथा भविष्य में मुनिराजों की रक्षा का संकल्प लेकर स्मरणार्थ रक्षासूत्र बांधा। बलि ने भी क्षमायाचना करके जैनधर्म स्वीकार किया।

मुनि विष्णुकुमार ने भी प्रायश्चित लेकर पुन: मुनिपद धारण किया और आत्म-साधना करके अंत में मुक्ति प्राप्त की।

(ब) सेठ सुदर्शन की कथा

(ब्रम्हचर्य व्रत पालन की कथा)

काफी समय पहले मगध देश के चम्पापुर नगर में वृषभदत्त नाम के सेठ रहते थे। उनके यहाँ एक ग्वाला गाय-भैंस पालने का कार्य करता था। उस ग्वाले को एक दिन जंगल में मुनिराज के दर्शन हुये और उन मुनिराज ने उसे पंच नमस्कार मन्त्र दिया । जिस पर उसकी गहन श्रद्धा हो गई। एक दिन किसी दुर्घटनावश उस ग्वाले की अकस्मात् मृत्यु हो गयी। वह पंच नमस्कार मंत्र के स्मरणपूर्वक मरण को प्राप्त हुआ और निदानबन्ध के फलस्वरूप अपने स्वामी सेठ वृषभदत्त का पुत्र हुआ। उसका नाम सुदर्शन रखा गया। वह जन्म से ही अतिशय रूपवान और बुद्धिमान था।

युवावस्था में सुदर्शन का विवाह मनोरमा नामक कन्या से हुआ और वे दोनों ही तीव्र धर्मरुचि से प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान के दर्शन-पूजन, स्वाध्याय, तत्त्वचिंतन पूर्वक श्रावक धर्म का पालन करते हुये जीवन व्यतीत कर रहे थे। कुछ समय बाद वैराग्य उत्पन्न होने पर सेठ वृषभदत्त ने अपना व्यापार पुत्र सुदर्शन को सौंपकर दिगम्बर मुनिराज के समीप जिनदीक्षा धारण कर ली। सेठ सुदर्शन की ख्याति थोड़े ही समय में सम्पूर्ण राज्य में फैल गई।

एक दिन सेठ सुदर्शन मगध के राजा के साथ किसी उत्सव में सम्मिलित हुये। वहाँ महारानी अभया ने सेठ सुदर्शन को देखा और वह उनके रूप पर मोहित हो गई और किसी प्रकार से उन्हें पाने के उपाय पर विचार करने लगी। उसने अपनी एक दासी को धन का लालच देकर वश में किया तथा उससे इस कार्य में सहयोग माँगा। दासी ने सेठ सुदर्शन को महल में लाने का उपाय बनाया।

सेठ सुदर्शन की रुचि सांसारिक विषयों के विपरीत आत्मकल्याण के प्रति अधिक थी, उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत भी धारण कर लिया था। अत: वे आत्माराधना के लिये प्रति अष्टमी व चतुर्दशी को श्मशान में जाकर आत्मध्यान में रत रहते थे। यह बात महारानी की दासी को पता चली, तो एक रात्रि, जिस समय सेठ सुदर्शन श्मशान में ध्यानस्थ थे, वह दासी श्मशान में जाकर सेठ सुदर्शन को उठा लाई तथा पहरेदारों को महारानी का भय दिखाकर तथा धन का लालच देकर अपने वश में करके सेठ सुदर्शन को महारानी के कक्ष तक पहुँचा दिया।

सेठ सुदर्शन को अपने कक्ष में पाकर रानी अत्यंत प्रसन्न हुई। उसने सेठ सुदर्शन के सामने अपनी विषयाभिलाषा प्रगट की परन्तु सेठ सुदर्शन इस घटना को अपने ऊपर उपसर्ग जानकर ध्यानस्थ हो गए फलत: वे मौन ही रहे। रानी ने अपने हाव-भाव आदि अनेक प्रकारों से सेठ सुदर्शन को विचलित करने का प्रयत्न किया परन्तु वह असफल ही रही। तब रानी ने सेठ सुदर्शन के साथ भयंकर कुचेष्टायें करना आरम्भ कर दिया परन्तु सेठ सुदर्शन प्रतिमावत् अचल ही रहे, उन्होंने कोई प्रत्युत्तर ही नहीं दिया। अपनी इच्छापूर्ति में असफल रहने पर रानी खीझ व क्रोध से भर उठी और उसने स्वयं को नोंचकर व अपने वस्त्र फाड़कर शोर मचा दिया। राजा समेत अन्य लोगों के आने पर वह रोने लगी और उसने सेठ सुदर्शन पर मिथ्या आरोप लगा दिया कि उसने मेरे साथ दुराचार करने का प्रयास किया। राजा ने सेठ सुदर्शन को गिरफ्तार करने का आदेश दिया और बिना विचार किये ही उन्हें मृत्युदण्ड देने की घोषणा कर दी।

अगले दिवस प्रात:काल होने पर राजा के सैनिक सेठ सुदर्शन को मृत्युदण्ड देने के लिये वधस्थल पर ले गए और सैनिकों ने उन्हें मारने के लिये

जैसे ही तलवार का प्रहार किया, वह तलवार फूलों की माला बनकर उनके गले में झूल गई तथा चारों ओर आकाश में उनकी व ब्रह्मचर्य धर्म की जय-जयकार के शब्द गूँजने लगे। राजा को पता चलने पर उसने सेठ सुदर्शन से क्षमा माँगी। इस घटना के बाद सेठ सुदर्शन ने अपने पुत्र सुकान्त को व्यापार आदि कार्यभार सौंप दिया तथा वन में जाकर वहाँ विराजमान विमलवाहन मुनिराज के पास जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार कर ली। अपने ऊपर हुये उपसर्ग के समय ही वे यह प्रतिज्ञा कर चुके थे कि इस उपसर्ग के दूर होने पर मुनिदीक्षा धारण कर लेंगे। मुनि अवस्था को धारण कर सुदर्शन मुनिराज ने तपश्चर्या करके चारों घातिया कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त किया तथा कुछ समय पश्चात् अरहन्त दशा से भी बढ़कर वे सिद्ध पद को प्राप्त हुये। इस तरह ब्रह्मचर्य व्रत की दृढ़तापूर्वक उन्होंने अपने शील की रक्षा की एवं आत्मसाधना द्वारा मुक्ति पद प्राप्त किया।

ध्यान दें !!!

१. ऐसा कौन सा स्थान है, जहाँ से जीव आता तो है किंतु जाता नहीं ?
उत्तर - **नित्य निगोद** ।

२. ऐसा कौन सा स्थान है, जहाँ जीव जाता तो है किंतु वापिस नहीं आता ?
उत्तर - **सिद्ध क्षेत्र** ।

३. ऐसा कौन सा स्थान है, जहाँ जीव न जाता है, न आता है ?
उत्तर - **अलोकाकाश** ।

४. ऐसा कौन सा स्थान है, जहाँ से जीव आता भी है और जाता भी है?
उत्तर - **चारों गतियां**

पद्य खंड

अनुप्रेक्षा (बारह भावना)

अनुप्रेक्षा अर्थात् बार-बार चिन्तन। किसी विषय की गहराई में जाने के लिये उसके स्वरूप का बार-बार विचार करना ही चिन्तन है। यहाँ किसी लौकिक विषय के चिन्तन को नहीं अपितु वैराग्योत्पादक, तत्त्वपरक चिन्तन को अनुप्रेक्षा कहा है। तात्पर्य यह है कि संसार, शरीर एवं भोगों से वैराग्य उत्पन्न करके निज आत्मा में उपयोग को लगाने के लिये बारम्बार जो तत्त्वपरक चिन्तन किया जाता है, उसे अनुप्रेक्षा या भावना कहते हैं। इनका चिन्तन गृहस्थ एवं मुनिराज दोनों ही करते हैं। चूँकि यह चिन्तन बारह प्रकार से होता है अत: इसे बारह भावना भी कहा जाता है। जिन बारह प्रकारों से बारम्बार चिन्तन किया जाता है उस बारह प्रकारों (भावनाओं) के नाम निम्न हैं :-

(1) अनित्य भावना (2) अशरण भावना (3) संसार भावना (4) एकत्व भावना (5) अन्यत्व भावना (6) अशुचि भावना (7) आस्रव भावना (8) संवर भावना (9) निर्जरा भावना (10) लोक भावना (11) बोधि दुर्लभ भावना (12) धर्म भावना।

बारह भावना (पद्य)

अनित्य राजा राणा छत्रपति हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार॥

अशरण दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बिरियाँ जीव को, कोई न राखन हार॥

संसार दाम बिना निर्धन दु:खी, तृष्णावश धनवान।
कबहुँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान॥

एकत्व आप अकेला अवतरे, मरे अकेलो होय।
यूँ कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय॥

अन्यत्व जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपनो कोय।
घर-सम्पत्ति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय॥

अशुचि दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह॥

आस्रव मोह-नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्मचोर चहुँओर, सरवस लूटैं सुध नहीं॥

संवर सत्गुरु देय जगाय, मोह नींद जब उपशमै।
तब कछू बनै उपाय, कर्म-चोर आवत रुकैं॥

निर्जरा ज्ञान-दीप तप तैल भर, घर शोधै भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसैं नहीं, बैठे पूरब चोर॥
पंच महाव्रत संचरन, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय-विजय, धार निर्जरा सार॥

लोक चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादि तैं, भरमत हैं बिन ज्ञान॥

बोधिदुर्लभ धन-कन-कंचन राजसुख, सबहिं सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान॥

धर्म जाँचे सुरतरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन
बिन जाँचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन॥

– पं. भूधरदास जी कृत॥

बढ़े चलो

बढ़े चलो, बढ़े चलो, प्रभु के पथ पर बढ़े चलो
गुरु संगति में बढ़े चलो, हो असंग तुम बढ़े चलो
सम्यक् श्रद्धा, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र शिवपद जान।
हर्षित होकर बढ़े चलो, प्रभु.....॥
तत्त्वों का सम्यक् निर्णय हो, भेदज्ञान आतम अनुभव
पुरुषारथ से बढ़े चलो, प्रभु.....॥
आगम से हो सम्यक्ज्ञान, पढ़ो-पढ़ाओ हो कल्याण।
भक्तिभाव से बढ़े चलो, प्रभु.....॥
भाओ नित वैराग्य भावना, गुरुसाक्षी में चारित्र धरना।
मुक्तिपथ में बढ़े चलो, प्रभु.....॥
परीषहों से नहीं घबराना, क्षण-क्षण भावविशुद्धि बढ़ाना।
अंतर में ही बढ़े चलो, प्रभु.....॥
आतम श्रद्धा, आतमज्ञान, आतमलीनता चारित्र जान।
ज्ञान सिन्धु में रमे चलो, प्रभु.....॥

●

सांत्वनाष्टक

शान्त चित्त हो निर्विकल्प हो, आत्मन् निज में तृप्त रहो ।
व्यग्र न होओ क्षुब्ध न होओ, चिदानन्द रस सहज पिओ ।। टेक।।

स्वयं स्वयं में सर्व वस्तुएँ, सदा परिणमित होती हैं ।
इष्ट-अनिष्ट न कोई जग में, व्यर्थ कल्पना झूठी है ।।
धीर-वीर हो मोहभाव तज, आतम-अनुभव किया करो ।। 1।। व्यग्र.।।

देखो प्रभु के ज्ञान माहिं, सब लोकालोक झलकता है ।
फिर भी सहज मग्न अपने में, लेश नहीं आकुलता है ।।
सच्चे भक्त बनो प्रभुवर के ही पथ का अनुसरण करो ।। 2।। व्यग्र.।।

देखो मुनिराजों पर भी, कैसे-कैसे उपसर्ग हुए ।
धन्य-धन्य वे साधु साहसी, आराधन से नहीं चिगे ।।
उनको निज-आदर्श बनाओ, उर में समता-भाव धरो ।। 3।। व्यग्र.।।

व्याकुल होना तो, दुख से बचने का कोई उपाय नहीं ।
होगा भारी पाप बंध ही, होवे भव्य अपाय नहीं ।।
ज्ञानाभ्यास करो मन माहीं, दुर्विकल्प दुखरूप तजो ।। 4।। व्यग्रः ।।

अपने में सर्वस्व है अपना, परद्रव्यों में लेश नहीं ।
हो विमूढ़ पर में ही क्षण-क्षण, करो व्यर्थ संक्लेश नहीं ।।
अरे विकल्प अकिंचित्कर ही, ज्ञाता हो ज्ञाता ही रहो ।। 5।। व्यग्र.।।

अन्तर्दृष्टि से देखो नित, परमानन्दमय आत्मा ।
स्वयंसिद्ध निर्द्वन्द निरामय, शुद्ध-बुद्ध परमात्मा ।।
आकुलता का काम नहीं कुछ, ज्ञानानन्द का वेदन हो ।। 6।। व्यग्र.।।

सहज तत्त्व की सहज भावना, ही आनन्द प्रदाता है ।
जो भावे निश्चय शिव पावे, आवागमन मिटाता है ।।
सहजतत्त्व ही सहज ध्येय है, सहजरूप नित ध्यान धरो ।। 7।। व्यग्र.।।

उत्तम जिन वचनामृत पाया, अनुभव कर स्वीकार करो ।
पुरुषार्थी हो स्वाश्रय से इन, विषयों का परिहार करो ।।
ब्रह्म भावमय मंगल चर्या, हो निज में ही मग्न रहो ।। 8।। व्यग्र.।।